बौद्धिक संपदा - जन सामान्य की आवश्यकता

पी के अश्विनी कुमार एवं डी पी भट्ट
राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली 110012

सारांश

1995 में डब्ल्यू टी ओ के अस्तित्व में आने के बाद, बौद्धिक संपदा प्रक्रियाओं में विश्व भर में तेजी आयी। लोगों, संस्थाओं और देशों द्वारा अर्जित बौद्धिक संपदा के गैरकानूनी उपयोग को रोकने के लिए अनेक नियमों को पुनः सुधारा गया। बौद्धिक संपदा प्रक्रियाओं का क्षेत्र केवल विज्ञान की उच्च प्रौद्योगिकी वाले क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है बल्कि व्यापारिक विधियां, कला, साहित्य और मनोरंजन आदि के क्षेत्र भी इसमें समाहित हैं। उदाहरण के लिए, अमरीका में एक पेटेंट द्वारा किसी व्यापारिक विधि की सुरक्षा की संभावना है। यद्यपि अभी यह केवल एक देश तक ही सीमित है लेकिन दूसरे देशों में कानून बदलते ही परिदृश्य बदल सकता है।

यद्यपि बौद्धिक संपदा प्रक्रियाओं में पेटेंट बाध्यकरण सबसे ऊपर है, हालांकि काफी समय से कॉपीराइट, भौगोलिक संकेतकों ने भी दुनिया भर में आई पी प्रोफेशनल्स का ध्यानाकर्षित किया है। कॉपी राइट का मनोरंजन उद्योग, ऑडियो और सिनेमेटोग्राफी दोनों से सुस्पष्ट संबंध है जबकि भौगोलिक संकेतक उत्पादों और सेवाओं की दृष्टि से पूरे राष्ट्र से संबद्ध हैं।

इस शोधपत्र में जन साधारण के जीवन को प्रभावित करने में बौद्धिक संपदा की भूमिका को विस्तार से बताया गया है। इसमें भौतिक एवं सांस्कृतिक दोनों रूपों में जन साधारण के जीवन को बेहतर बनाने में आई पी की मुख्य भूमिका को भी बताने का प्रयास किया गया है।

विद्युत विभेदन विधि से प्रयोगशाला में ब्रैसिका वंश की जातियों एवं प्रजातियों के बीजों का प्रमाणीकरण

प्रीतेश कुमारी एवं आर.के.एस. राठौर
वनस्पति विज्ञान विभाग, आर.बी.एस. कॉलेज, आगरा-2

सारांश

प्रारम्भ में तैलीय *ब्रैसिका* (सरसों) की उत्पादक फसलों को उनके बीजावरण के रंग के आधार पर आसानी से पहचाना जा सकता था। जैसा कि *ब्रैसिका कैम्पेस्ट्रिस* को पीले रंग से *ब्रैसिका जन्सिया* को भूरे रंग तथा *ब्रैसिका नाइग्रा* को काले रंग के बीजावरण से आसानी से पहचाना जा सकता था। परन्तु अब तैलीय प्रकृति एवं बीजोत्पादन की बढ़ोत्तरी के प्रयासों के फलस्वरूप पीले रंग वाली *ब्रैसिका जन्सिया* तथा भूरे रंग वाली *ब्रैसिका कैम्पेस्ट्रिस* उपलब्ध हैं। यही कारण है कि केवल बीजावरण के रंग के आधार पर सरसों की विभिन्न जातियों को पहचानना कठिन हो गया।

स्टेग्मन (1983) ने बताया कि जैव-रासायनिक परीक्षणों का प्रयोग करके दैहिक संकरण द्वारा लायी गयी उन आनुवंशिक विभिन्नताओं को आसानी से पहचाना जा सकता है जो कि *ब्रैसिका* वंश की उन्नत किस्मों में बीजावरण के वर्णक में मिलावट तथा दूसरे आकारिकी मापकों के परिणामस्वरूप *जन्सिया* समूह की उपजातियाँ पीले बीजावरण वाली तथा कैम्पेस्ट्रिस समूह की भूरे बीजावरण वाली पायी गयीं।

कार्बनिक फॉस्फेट पीड़कनाशी - मिथाइल पैराथियॉन का चार्ल्स फॉस्टर चूहों पर क्षिप्र एवं दीर्घकालीन जैव-रासायनिक अविषालुता परीक्षण

पल्लवी सिंह, *आर.आर.एस. चौहान, वीणा पाण्डेय एवं *सीमा पाण्डेय
जन्तु विज्ञान विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया-206122
*जन्तु विज्ञान विभाग, जनता महाविद्यालय,
अजीतमल, औरैया 206122

सारांश

मिथाइल पैराथियॉन (आर्थो, आर्थो-डाई-मिथाइल, ऑर्थो-नाइट्रोफिनायल फॉस्फोरोथायोएट) प्रायः अधिकतर प्रयोग में लाया जाने वाला पीड़कनाशी है। चार्ल्स-फॉस्टर चूहों को, 14 दिनों के क्षिप्र अविषालुता परीक्षण और 45 दिनों दीर्घकालीन आविषालुता परीक्षण के लिये मुख द्वारा मिथाइल पैराथियॉन की घातक मात्रा की एक तिहाई (1/3), एक चौथाई (1/4) एवं आधी (1/2) मात्रा दी जाती है और प्रतिदिन उनका शारीरिक भार, ग्रहण की गयी भोजन एवं जल की मात्रा, उनका व्यवहार और रक्त की जैव-रासायनिक मापों का परीक्षण किया जाता है। रक्त के निश्चित मापों में जैसे कि - रक्त शर्करा, रक्त यूरिया एवं सीरम कोलेस्ट्रॉल की मापों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आते हैं। रक्त शर्करा की मात्रा, समय अंतराल पर दी गयी घातक मात्रा बढ़ती हुई सान्द्रता के साथ बढ़ जाती है। रक्त यूरिया बढ़ती हुई सान्द्रता के साथ बढ़ जाती है जबकि सीरम कोलेस्ट्रॉल की मात्रा में क्षिप्र एवं दीर्घकालीन आविषालुता काल में अत्यधिक परिवर्तन होते हैं।

बिगड़ता पर्यावरण

दर्शना नन्द
उपनिदेशक, उद्यान (अ.प्रा.)
उद्यान विभाग, उत्तर प्रदेश

सारांश

पर्यावरण वर्तमान युग का महत्वपूर्ण विषय बन गया है। आज अपने ही कार्यकलापों और स्वार्थ लोलुप्ता के कारण पर्यावरण दिन- प्रतिदिन और भी अधिक प्रदूषित होता चला जा रहा है। ऐसी गम्भीर स्थिति में मानव स्वास्थ्य के असीम घातक होने की सम्भावनाएं प्रबल हैं। प्रदूषित पर्यावरण की यह समस्या अब विश्वव्यापी हो चुकी है। इसीलिए स्वच्छ पर्यावरण बनाए रखने का स्मरण कराने हेतु प्रत्येक वर्ष 5 जून को 'विश्व पर्यावरण दिवस' मनाया जाता है। प्रदूषित पर्यावरण में अनेक प्रदूषक विद्यमान रहते हैं। इन्हीं प्रदूषकों के द्वारा पारिस्थितिकीय संतुलन डगमगा जाता है। इन प्रदूषकों के अनेक स्रोत हैं, जिनके कारण ही पर्यावरण विषय अत्यधिक विशाल हो गया है। अस्तु प्रस्तुत आलेख में मात्र कुछ ही अति महत्वपूर्ण विशेष बिन्दुओं को प्रकाश में लाने के प्रयास किए गए हैं।

गेहूँ में उष्म सहिष्णुता हेतु समूहीकरण

जे.बी. सिंह[1], एस.एस. सिंह[2], एस.वी. सिंह[3] एवं ए. कुमार[1]
[1]सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौ. विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र, नगीना
[2]आनुवंशिकी संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[3]कृषि वनस्पति विभाग, जनता वैदिक कालेज, बड़ौत (बागपत)

सारांश

गेहूँ के 150 जीन प्रारूपों (जनन द्रव्य/उन्नत किस्में/प्रजातियों) का उष्म सहिष्णुता के लिये वर्ष 2001-2002 व 2002-03 में विलम्ब से बुवाई की परिस्थितियों में अध्ययन किया गया। आनुवंशिक विविधता के लिये डी.एन. स्पार्क के सिद्धांत के अनुसार सभी किस्में प्रथम, द्वितीय एवं युग्म विवेचना में छः समूहों में विभाजित की गयीं। कुछ किस्में प्रथम, द्वितीय वर्ष व युग्म विवेचना में एक ही समूह में रहीं जो इन किस्मों के स्थायित्व को प्रदर्शित करता है तथा इन समूहों की निम्न आपसी आनुवंशिक विविधता को दर्शाता है। परन्तु कुछ उन्नत प्रदर्शन वाली किस्में समूह चार से छः तक विचरित करती रहीं क्योंकि इन समूहों की आपस की दूरी निम्न थी। समूह औसत में उष्म सहिष्णुता का मुख्य अवयव सी.टी.डी. 3.13°C से 5.64°C तक पाया गया। इस विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि उच्च तापमान (> 30°C) गेहूँ की बाली में दाना बनते समय उसके आकार तथा वजन को प्रभावित करता है। अतः उष्म सहिष्णु क्षेत्रों के लिये उन्नत प्रजातियों की उत्पत्ति के समय दाना वजनी तथा संख्या में अधिक होना चाहिये एवं सी.टी.डी. भी > 3.5°C हो ताकि उच्च तापमान के कुप्रभाव से उत्पादन क्षमता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़ सके।

उत्तर प्रदेश के मध्य-पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में आम की विभिन्न प्रजातियों का मूल्यांकन

योगेश प्रसाद, अशोक कुमार, डी.के. सिंह एवं मनोज राघव
सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय अनुसंधान केन्द्र, नगीना (बिजनौर) 246 762

सारांश

आम की 'बम्बई हरा' प्रजाति में सबसे अधिक ऊँचाई 4.41 m मापी गई जबकि 'लंगड़ा' एवं 'चौसा' प्रजातियाँ उसके बाद रहीं तथा सबसे कम ऊँचाई 1. 65 m 'बिहार केतकी' प्रजाति में मिली। लंगड़ा प्रजाति में तने की मोटाई सबसे अधिक 65.3 cm मापी गई जिसके बाद मीठा 'मालदह' एवं 'बम्बई हरा' रहीं। वृक्ष की उत्तर-दक्षिण दिशा में अधिकतम ऊंचाई 5.8 m लंगड़ा प्रजाति में मिली जबकि मीठा मालदह एवं रामकेला प्रजाति उसके बाद थीं। सबसे कम ऊंचाई बिहार केतकी प्रजाति में मिली। इसी प्रकार पूर्व-पश्चिम दिशा में अधिकतम ऊंचाई 5.75 m दुबारा लंगड़ा प्रजाति में मिली जिसके बाद रामकेला, बम्बई हरा, मीठा मालदह रहीं।

अधिकतम फल वजन 780.6 g फजरी प्रजाति में पाया गया। उसके बाद चौसा, मीठा मालदह एवं लंगड़ा रहे, जबकि सबसे कम वजन 135.4 g लखनऊ सफेदा में मिला। सबसे अधिक लम्बा फल फजरी प्रजाति में मिला। उसके पश्चात् मीठा मालदह, चौसा एवं मल्लिका रहे, जबकि सबसे कम लम्बाई 8.3 cm लखनऊ सफेदा में मापी गई। इसी प्रकार फल की अधिकतम मोटाई 11.54 cm मीठा मालदह में रही तथा न्यूनतम आम्रपाली प्रजाति में मिली। अधिकतम गूदा (76.27 %) लंगड़ा प्रजाति में नोट किया गया, तत्पश्चात् दशहरी (71.27 %), आम्रपाली, मल्लिका, चौसा, मीठा मालदह एवं फजरी में मिला। इसी प्रकार से न्यूनतम गुठली प्रतिशत लंगड़ा में मापा गया। दशहरी मल्लिका, आम्रपाली, चौसा एवं फजरी प्रजातियों में भी कम गुठली प्रतिशत मिला। इसकी भिन्नता का सम्भावित कारण आम का सबसे अधिक हेटरोजाइगस स्वभाव का होना है जिसमें स्थान विशेष पर भिन्नता होती है। सबसे अधिक टी.एस.एस. 21. 40% आम्रपाली में मापा गया, उसके पश्चात् मीठा मालदह रहा। रामकेला प्रजाति में सबसे कम 15.80% टी.एस.एस. नोट किया गया।

मध्यम अवधि वाले धान में कटाई समय का प्रबंधन एवं संरक्षित नमी के सदुपयोग से रबी में दलहनी और तिलहनी फसलों की सार्थकता का अध्ययन

वाई. के. देवांगन, एन. पाण्डेय, आर.के. बाजपेयी एवं आर.एस. त्रिपाठी
सस्य विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)

सारांश

छत्तीसगढ़ में धान की कटाई के समय का प्रबंधन करते हुए दलहनी एवं तिलहनी फसलों के मूल्यांकन करने के उद्देश्य से इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर के अंतर्गत राष्ट्रीय कृषि प्रौद्योगिकी परियोजना के तहत ब्लॉक - आरंग में ग्राम - छतौना पर प्रक्षेत्र स्थल का चयन कर परीक्षण किया गया। इस प्रयोग के अंतर्गत खरीफ में दो उपचार थे। पहले उपचार में मुख्य प्रखण्ड के अंतर्गत - धान की कटाई फूल आने के 30 दिन बाद करना। (H_{30} डी.ए.एफ.) और दूसरा फल आने के 40 दिन बाद करना (H_{40} डी.ए.एफ.)। रबी में उप-प्रखण्ड के अंतर्गत चना, कुसुम और राजमा फसल के उत्पादन का परीक्षण करना। उपरोक्त उपचार विभक्त प्रखण्ड अभिकल्पना (स्प्लिट प्लाट डिजाईन) के अंतर्गत किया गया। उपरोक्त दोनों उपचारों में कटाई के दौरान मृदा नमी की स्थिति का आकलन किया और तीन अलग-अलग रबी फसल चना, कुसुम और राजमा फसल लगाया। धान के वृद्धि, उत्पादन मापक (परीक्षण भार एवं प्रभावी कल्ले/मी.^{2} को छोड़कर), दाने की उपज और पैरें की उपज में सार्थक अंतर नहीं पाया गया, चाहे उसे फूल आने के 30 दिन बाद कटाई करें अथवा 40 दिन बाद। परन्तु रबी की फसल (चना, कुसुम और राजमा) की बुआई धान के फूल आने के 30 दिन बाद करने से अपेक्षाकृत पौध संख्या, शुष्क भार, पौधे की ऊँचाई और उपज में सार्थक अंतर पाया गया। इससे अधिक चना समतुल्य उपज एवं लाभ : लागत प्राप्त होती है एवं चना की फसल राजमा और कुसुम की तुलना में अधिक आमदनी वाली पायी गयी।

सामन्जित औद्योगिक विकास - पंचतत्व प्रबंध, एक सशक्त माध्यम

डा. संजीव कुमार गोयल एवं डा. प्रभाकर नेमा
राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान, नेहरू मार्ग, नागपुर-440 020

सारांश

प्रस्तुत शोधपत्र में सामन्जित औद्योगिक विकास हेतु एक ऐसी परिकल्पना का प्रारूप तैयार किया गया है जिसके अंतर्गत एक उद्योग से उत्सर्जित होने वाले ठोस व द्रवीय अपशिष्ट पदार्थों का उपयोग उस क्षेत्र की अन्य इकाइयों में उपयुक्त उत्पाद बनाने के लिए किया जा सकता है। जिससे न केवल पर्यावरण को दूषित करने वाले अवयव कम मात्रा में निकलेंगे, अपितु विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक एवं अन्य संसाधनों विशेषकर ऊर्जा एवं जल की खपत में भी काफी कमी होगी। इस प्रारूप को चीनी-डिस्टिलरी एवं कागज उद्योगों के संदर्भ में एक उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, जिसका विस्तार अन्य उद्योग समूहों के लिए भी संभव है। इस प्रकार औद्योगिक विकास के साथ-साथ एक स्वच्छ एवं समृद्ध पर्यावरण की परिकल्पना को साकार किया जा सकता है।

शीत मरूस्थल के सुगन्धित पौधे और उनकी उपयोगिता

ओम प्रकाश चौरसिया, बसन्त बल्लभ और भगवान राउत
क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला, लेह-लद्दाख

सारांश

आजकल पश्चिमी देशों के साथ-साथ भारत में भी सुगन्ध चिकित्सा अर्थात् एरोमाथिरैपी का प्रचलन बढ़ रहा है और यह चिकित्सा काफी हद तक कामयाब भी हो रही है। अतः ऐसी परिस्थितियों में सुगन्धित पौधों का महत्व काफी बढ़ जाता है। क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला, लेह-लद्दाख जो कि रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन की एक महत्वपूर्ण प्रयोगशाला है, औषधीय तथा सुगन्धित पौधों के विभिन्न पहलुओं पर विगत एक दशक के भी लम्बे समय से अनुसंधान कार्य कर रही है। प्रस्तुत आलेख में लद्दाख के 21 महत्वपूर्ण सुगन्धित पौधों की संक्षिप्त जानकारी के साथ उनकी खेती तथा उपयोगिता का विवरण दिया जा रहा है। इससे क्षेत्र की दुर्लभ सुगन्धित सम्पदा के संरक्षण तथा बचाव में मदद मिलने के साथ-साथ क्षेत्रवासियों को इन पौधों की खेती से सम्बन्धी कार्यों पर सही-सही जानकारी तथा लाभ भी मिलेगा।

मरूस्थल में कैर के फलों का पारंपरिक विधियों द्वारा प्रसंस्करण

जबरदान कविया एवं हरपाल सिंह
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्), जोधपुर-342003 (राजस्थान)

सारांश

कैर (*कैपारिस डेसीडुआ*) थार मरूस्थल की बहुत ही उपयोगी झाड़ियों में से एक है। कैर पश्चिमी राजस्थान के नागौर, जोधपुर, बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर, पाली, झुँझुनू आदि जिलों में बहुतायत से पायी जाने वाली झाड़ी है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों के साथ-साथ पथरीली व दोमट भूमि में कैर अधिक पनपता है। कैर के फलों की बहुत उपयोगिता होने से स्वतः ही इसकी झाड़ियों को संरक्षण मिलता है। गर्मियों के मौसम में कैर की झाड़ियों में पक्षी तथा छोटे व बड़े जंगली जानवर शरण लेते हैं। इसके अलावा खेतों की मेड़ों व परती जमीन पर कैर की झाड़ियाँ होने से हवा द्वारा खेत की उपजाऊ मिट्टी का कटाव भी कम होता है। कैर के फूल व कोमल टहनियाँ भेड़, बकरी व ऊँट द्वारा चरने के काम आती हैं व इसके अधपके फल अचार, चटनी व सब्जी बनाने के काम में आते हैं। गाँव के गरीब तबके की औरतें, बच्चे व बुजुर्ग कैर के फलों को तोड़कर बाजार में बेचकर अच्छा पैसा कमा लेते हैं। कैर के फलों की कड़वाहट दूर करने के लिये इन्हें स्वच्छ पानी, नमक के पानी या खट्टी छाछ में भिगोकर अथवा पानी के साथ उबालने, आदि की पारंपरिक विधियाँ अपनाते हैं।

वनस्पतियों से तैयार रसायनों द्वारा दीमक की रोकथाम

महेश पाल, बी. एस. दीक्षित और रंजन बनर्जी
पादप रसायन विभाग, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ-226001

सारांश

दीमक एक छोटा कीट है, जो भूमि, लकड़ी व भवन के अन्दर निवास करता है। यह कीट फसल, भवन एवं अनगिनत अन्य वस्तुओं का सर्वनाश कर हमें प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अरबों रुपयों की हानि पहुंचाता है। दीमक नियंत्रण के लिए अभी तक कार्बनिक एवं अकार्बनिक रसायनों का ही प्रयोग होता है। कार्बनिक रसायनों में अधिकतर क्लोरीनयुक्त हाइड्रोकार्बन समूह के यौगिक जैसे—डी.डी.टी. एल्ड्रिन, बी.एच.सी. तथा क्लोरफाइरीफॉस आदि हैं तथा अकार्बनिक रसायनों में सोडियम डाइक्रोमेट, मरक्यूरिक क्लोराइड तथा आर्सेनिक पेन्टा ऑक्साइड से बने यौगिकों का प्रयोग किया जाता है। इस रसायन के सरलता से अपघटित न होने एवं दीर्घ स्थायी होने के कारण प्रदूषण बढ़ाने, भूमिगत जल के विषैला होने तथा प्रयुक्त रसायनों से कैंसर, टी.बी. तथा दमा जैसे घातक रोग होने की सम्भावना बनी रहती है। क्योंकि कुछ कीटनाशक जमीन में पड़े-पड़े अपघटित होकर अत्यधिक प्रभावशाली हो जाते हैं, इसलिए इनके स्थान पर प्राकृतिक वानस्पतिक स्रोतों, जो सरलता से अपघटित हों तथा प्रदूषणमुक्त हों, पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है। भाट पौधे का क्लोरोफार्म निष्कर्षित अर्क, हेक्जेन व ब्यूटेनॉल अर्क की तुलना में दीमक के लिए अधिक प्रतिकर्षी पाया गया।

जैवचिकित्सीय उपयोगिता वाले कुछ एडीनोसीन व यूरीडीन समरूपों का संश्लेषण

सारिका सिन्हा, ऋचा श्रीवास्तव एवं रमेन्द्र कुमार सिंह*
न्यूक्लीक एसिड्स रिसर्च लैबोरेट्री, रसायन शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-211002

सारांश

न्यूक्लियोसाइड समरूपी अतिउत्तम प्रतिविषाणुक और एण्टीट्यूमर कारक होते हैं। वे विकारी रोगाणुओं का प्रवर्धन या तो विशिष्ट रूप से रोगाणु के न्यूक्लियोसाइड, न्यूक्लियोटाइड अथवा न्यूक्लीक एसिड के उपपाचन में काम आने वाले एन्ज़ाइम उदाहरणार्थ डी.एन.ए. व आर.एन.ए. पॉलीमरेज, थाइमिडाइलेट सिन्थेटेज़ एडीनोसीन डीएमाइनेज़, एडीनोसीन काइनेज़, सैम डिपेन्डेन्ट मिथिल ट्रान्सफरेज़ आदि को रोक कर अथवा प्रतिकृति या अनुलेखन के दौरान बनने वाले नये न्यूक्लीक एसिड की चेन में समाविष्ट होकर करते हैं, जो कि रोगाणु कोशिका में अक्रियात्मक एन्ज़ाइम व उत्परिवर्तित प्रोटीन के उत्पादन में परिणत होता है।

डी.एन.ए. पॉलीमरेज़ के निरोधियों में सबसे अधिक विस्तारपूर्ण अन्वेषित निरोधी शायद अरैबिनोसाइड हैं पर उनकी क्रिया के लिये क्रियाविधि निर्दिष्ट करना बहुत ही मुश्किल है। ये निरोधी डी.एन.ए. पॉलीमरेज़ के बुरे क्रियाधार कहे जाते हैं जो कि पुनरावृत्ति प्रक्रिया के दौरान श्रृंखला समापन में सहायक होते हैं। आर-ए या 9 (1-ß-D-अरैबिनोफ्यूरोनोसिल) एडिनीन प्रतिविषाणुक गुणधर्म वाला सर्वोत्तम अरैबिनोसाइड है। हालांकि इस अणु की प्रभावकारिता एडिनोसीन डीएमाइनेज़ एन्ज़ाइम द्वारा किये गये इसके डीएमाइनेशन से मंदित हो जाती है।

छत्तीसगढ़ में उच्चहन भूमियों पर फसल परिवर्तन अधिक आर्थिक लाभ में सहायक

दिनेश पाण्डेय, आर.एस. त्रिपाठी एवं एन. पाण्डेय
सस्य विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

सारांश

छत्तीसगढ़ के उच्चहन भूमियों में खेती से मध्यम व निचली जमीन की अपेक्षा काफी कम आमदनी होती है। इसका प्रमुख कारण धान की फसल लेना है, जो किसी न किसी अवस्था में सूखे से प्रभावित होती है। इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर में चल रही राष्ट्रीय कृषि तकनीक परियोजना द्वारा खरीफ 2003 में उच्चहन भूमियों पर अंतवर्ती फसल लेकर अनुसंधान किया गया। यह अनुसंधान छत्तीसगढ़ के महासमुंद जिले में कई गांवों पर किसान के खेत में किया गया। उच्चहन भूमि पर कम जल मांग वाली दलहनी-तिलहनी फसलों को कम अवधि वाले धान के साथ अंतवर्ती फसल के रूप में लेने से अधिक आर्थिक लाभ कमाया जा सकता है। इस अनुसंधान में धान, धान+अरहर (4:2), धान+तिल (2:2) व तिल+उर्द (2:2) को अंतवर्ती फसल लिया गया। उच्चहन भूमि में खरपतवार एक प्रमुख समस्या होती है, इसे ध्यान में रखते हुए तीन खरपतवार नियंत्रण विधियां अपनाई गईं। छत्तीसगढ़ में सामान्यतया होने वाली 1200-1400 mm वर्षा में उपयुक्त फसलों का चयन कर उच्चहन भूमि से अच्छी उत्पादकता ली जा सकती है। अनुसंधान परिणामों की विवेचना करने पर ज्ञात होता है कि विशुद्ध बोयी गयी धान की फसल से अंतवर्ती फसल द्वारा अधिक लाभ प्राप्त होता है।

भारतीय इंजीनियरी उद्योगों के लिए स्वदेशी उन्नत गैस बर्नर का विकास

हरीश कुमार मदान एवं उमेश कुमार जायसवाल
भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून

सारांश

पेट्रोलियम आधारित द्रव एवं गैस ईंधनों का विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में व्यापक उपयोग किया जाता है। इस समय मुख्य रूप से द्रवीकृत पेट्रोलियम गैस (एल पी जी) एवं प्राकृतिक गैस (नेचुरल गैस) पर आधारित कई डिज़ाइन के आयातित एवं स्वदेशी गैस बर्नरों का विभिन्न औद्योगिक भट्टियों में इस्तेमाल हो रहा

है। एक सर्वेक्षण के अनुसार अधिकतर आयातित गैस बर्नर ही प्रचलन में हैं। इनके डिज़ाइन भारतीय उद्योगों की आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं हैं तथा इनके डिज़ाइन जटिल होने के साथ-साथ ये अत्यंत महंगे भी हैं। दूसरी ओर स्वदेशी बर्नर वैज्ञानिक डिज़ाइन पर आधारित नहीं हैं जिसके परिणामस्वरूप गैस की तापीय ऊर्जा का उचित उत्सर्जन न हो पाने के कारण काफी मात्रा में गैस नष्ट हो जाती है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्र में देश की कुछ अग्रणी संस्थाओं ने देश में ही उन्नत गैस बर्नर की प्रौद्योगिकी विकसित करने की अत्यंत आवश्यकता पर विचार किया। देहरादून स्थित 'भारतीय पेट्रोलियम संस्थान' (आई आई पी) ने इस उद्देश्य को मूर्तरूप देने के लिए गहन अनुसंधान एवं विकास कार्य करने के पश्चात् 3 मॉडलों के उन्नत गैस बर्नर विकसित करने में सफलता प्राप्त की है।

मध्य प्रदेश के रीवा जिले में मोटे अनाज वाली फसलों की धीमी वृद्धि का अध्ययन

आदित्य नारायण गौतम एवं बिपिन बिहारी व्यौहार
कृषि अर्थशास्त्र एवं प्रक्षेत्र प्रबंध विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

सारांश

रीवा जिले के प्रचलित फसल प्रारूप में सर्वाधिक रकबा एवं कुल उत्पादन मोटे अनाज वाली फसलों का पाया गया, जो कि आदिवासियों व गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों के भरण-पोषण का प्रमुख स्रोत है। यह फसल गरीबों और आदिवासियों की जीविका का साधन होने के साथ-साथ वातावरण और मानव स्वास्थ्य में सकारात्मक योगदान देती है। इसके अलावा यह फसल पशुओं के चारे का साधन भी है। ये फसलें कम लागत में आसानी से तैयार हो जाती हैं। यह खाद्य संरक्षण का साधन है। प्रस्तुत शोध रीवा जिले के वर्ष 1980 से 2000 तक के द्वितीयक समग्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन है।

बायोमास ब्रिकेट

महेश सु. अलगमवार, पंकज न. कटके, प्रा. सचिन अ. मांडवगणे
डा. सी.वी. रमण इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, नागपुर

सारांश

हर वर्ष हमारे देश में कृषि एवं वनों से लाखों टन अनुपयोगी अवशेष प्राप्त होते हैं, जैसे कि लकड़ी, गोबर, भूसा, घासफूस, नारियल के तंतु एवं सब्जी मंडी से निकला हुआ सूखा कचरा इत्यादि। इन प्राप्त अवशेषों को या तो फेंक दिया जाता है, या प्राथमिक ईंधन के रूप में उपयोग में लाया जाता है। परंतु इन ईंधनों से आवश्यकता से बहुत कम ऊर्जा मिलती है। अतः अत्यधिक उपयोग के कारण यह तीन प्रमुख समस्याओं को जन्म देती है : बड़े पैमाने पर जंगल की कटाई; स्वास्थ्य एवं स्वच्छता संबंधी स्थितियों का बिगड़ना और; निलम्बित कण, CO एवं CO_2 आदि उत्पन्न होना, जो वायु प्रदूषण के प्रमुख कारक होते हैं। इस तरह इस्तेमाल में आ रहे साधनों को प्राकृतिक बंधक का प्रयोग कर अधिक सघनता वाले पुनर्उत्पादित ऊर्जा स्रोत ब्रिकेट में बदला जा सकता है।

परंपरागत ज्ञान के संरक्षण में आदिवासी महिलाओं की भूमिका

गीता ठाकुर एवं चन्द्रशेखर सिंह
विस्तार शिक्षा विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

सारांश

मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले की विभिन्न सामाजिक-व्यक्तिगत गुणों वाली आदिवासी महिलाओं के बीच औषधीय पौधों की उपयोगिता का विस्तृत अध्ययन किया गया है। इसके लिए जबलपुर जिले के कुण्डम विकासखण्ड की 120 महिलाओं को प्रतिचयन तकनीकी विधि से चुना गया एवं इनसे संरचनात्मक साक्षात्कार अनुसूची द्वारा आंकड़े एकत्रित किये गये। महिलाओं ने विभिन्न बीमारियों, पशु व्याधियों तथा अनाज संरक्षण के विभिन्न देशी तरीके बताए, जिनमें जंगल में उपलब्ध पौधों का बहुतायत से उपयोग किया जाता है। भविष्य में इस ज्ञान के सरंक्षण की अत्यन्त आवश्यकता है ताकि ज्ञान के साथ जैवविविधता का भी संरक्षण हो सके।

भारत में आदिवासी महिलाओं की स्थिति का सांख्यिकीय अध्ययन

गायत्री विश्वकर्मा, विमलेश माहुले एवं मानस गुप्ता
गणित एवं सांख्यिकीय विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

सारांश

भारत की कुल जनसंख्या का 7.15% भाग आदिवासी जनसंख्या का है। किसी भी देश, समाज और परिवार की उन्नति महिलाओं की उन्नति पर निर्भर है। एक आदिवासी महिला का उसके समाज की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संरचना में महत्वपूर्ण स्थान होता है। देबार कमीशन की एक रिपोर्ट में यह कहा गया है कि सामान्य जाति की महिलाओं की अपेक्षा जनजाति की महिलाओं के पास बहुत से क्षेत्रों में अपने लिए निर्णय लेनी की स्वतंत्रता अधिक होती है। परन्तु वे अपने स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रखती या यह कहना चाहिए कि वे जागरूक नहीं हैं। इस अध्ययन में इनकी स्वास्थ्य संबंधी स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। जिसमें विभिन्न प्राचालों (parameters) का उपयोग किया गया है, जैसे लैंगिक अनुपात (sex ratio), महिला साक्षरता (female literacy), विवाह रीतियां (marriage practices), विवाह आयु (marriage age), जननशक्ति और मृत्यु दर (fertility & mortality rate), जीवन संभावना (life expectancy), इत्यादि। इस अध्ययन में स्वास्थ्य पर इसलिए ध्यान दिया गया है क्योंकि इसका सीधा संबंध सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पहलुओं से है। इस अध्ययन में इन महिलाओं के विकास के लिए कुछ कार्ययोजना दी गयी हैं जो इनके स्वास्थ्य विकास के लिए एक आवश्यक कदम है।

डिफ्रैंशियल प्रैशर बाँध द्वारा स्वच्छ-जल आपूर्ति

टी. बालकृष्ण भट्ट एवं एस.एन. दीक्षित
रक्षा धातुकर्मीय अनुसंधान प्रयोगशाला, हैदराबाद-500 058

सारांश

पानी की कमी किसी भी राष्ट्र की प्रगति पर अंकुश लगा सकती है। अतएव हमें अपने जल स्रोतों को पहचानते हुए, प्रकृति से प्राप्त स्वच्छ-जल के रख-रखाव, बंटवारे व अनुशासनीय खपत की ओर ध्यान देना होगा। आज स्थिति गम्भीर होती जा रही है, और इसका कारण है बढ़ती हुई आबादी, कारखानों का विकास व प्राप्त साधनों की कमी। हमें अत्यधिक पानी इकट्ठा करने की आवश्यकता है, ताकि हमें स्वच्छ-जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता रहे और राज्यों के बीच, जल विवाद शुरू न हो। इस लेख में डिफ्रैंशियल प्रेशर बाँध (डी.पी.डी.) व नैकलेस नहर की कल्पना की गई है जो कि समुद्र तटीय क्षेत्रों में पानी की आपूर्ति कर सकेगी। डी.पी.डी. विधि में स्वच्छ-जल स्टोरेज क्षमता काफी होगी और सूखा पीड़ित राज्यों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर जल प्राप्त हो सकेगा। प्रस्तुत लेख में डी.पी.डी. प्रोजेक्ट से जुड़े तकनीकी पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। समुद्री लहरों की गति, दिशा व पानी का दबाव, साथ ही रेडियल वेव प्रैशर, तूफान आँधी से उत्पन्न समस्या, समुद्र के पानी से 'कोरोजन' आदि बातों पर, चन्द विशेषज्ञों की सलाह लेते हुए, अपने विचार व्यक्त किए हैं।

पर्यावरण सौम्य सड़क यातायात

अनिमेश कुमार, सोमेश्वर पाण्डेय एवं प्रभाकर नेमा
राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (नीरी), नागपुर-440 020

सारांश

यातायात को सुगम बनाती, बस्तियों को गांव से, गांव को नगर और नगर को महानगर से जोड़ती हैं सड़कें। यही सम्पर्क, संचार व अन्य व्यवस्थाओं का सुगम व सरल एवं प्राचीन माध्यम है। प्राचीन मार्ग अथवा राजमार्ग आज चहुमुखी प्रगति के चलते एक्सप्रेस हाई-वे तथा उड़ान पुलों में परिवर्तित हो गए हैं। यह परिवर्तन जहां एक ओर सड़कों की आधुनिक अवस्था को दर्शाता है वहीं हमारी सहस्रों आकार व प्रकार के वाहनों वाली यातायात व्यवस्था को भी दर्शाता है। मानव अप्रत्यक्ष रूप से स्वयं व प्रत्यक्ष रूप से अन्य को गाड़ियों के जहरीले धुएं का शिकार बना रहा है। हालांकि सी.एन.जी. जैसे विकल्पों के आने से कुछ सुधार हुआ है, फिर भी बहुत कुछ किया जाना शेष है। यहां वाहन उत्सर्जित प्रदूषण में सबसे प्रमुख है वायु प्रदूषण। किए गए अध्ययनों से पता चला है कि पूर्व और पश्चिम क्षेत्र की वायु में शामिल विविक्त पदार्थों की प्रतिशतता भिन्न-भिन्न है। उदाहरण के लिए शहर में निजी कारों की प्रतिशतता 39.7 है तथा पश्चिमी उपनगरीय क्षेत्र में यह 47.6 है, जबकि पूर्वी उपनगरीय क्षेत्र में यह मात्र 13.6 है।

ब्रायोफाइट्स - शैवाल संलग्नता

किरण टोप्पो एवं एम.आर. सुशीला*
शैवाल विभाग, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ-226001

सारांश

ब्रायोफाइट्स पर शैवाल की संलग्नता का अध्ययन करने के लिए राष्ट्रीय वनस्पति गार्डन से ब्रायोफाइट्स के नमूने जैसे *सायथोडियम ब्रायम* एवं *फ्यूनेरिया* एकत्रित किये गए। इसके मूलांगों (rhijoids) को पानी से धोकर सूक्ष्मदर्शी द्वारा सूक्ष्म अध्ययन करने पर उसमें शैवालों की विभिन्न कालोनियां पायी गयीं जो नील हरित शैवाल, हरित शैवाल, सुनहरे शैवाल एवं जैंथोफाइटा वर्ग की हैं। इस प्रकार शैवालों की कुल 21 प्रजातियां पायी गयीं जो ब्रायोफाइट्स के मूलांगों से संलग्नता दर्शाती हैं।

धूमकेतु के अस्तित्व की नई संभावनाएं

ज्योति प्रकाश श्रीवास्तव

सारांश

खगोल विज्ञान में 'धूमकेतु', 'पुच्छल तारा' या 'कॉमेट' कोई नया नाम नहीं है। इस नाम से भारत के प्राचीन ऋषि-मुनि तथा ज्योर्तिविद् भी अवगत थे और उनके ग्रंथों में इनके शुभाशुभ फलों का भी जिक्र था। भारत के प्रख्यात गणितज्ञ आचार्य वराहमिहिर ने अपनी कृति 'बृहत् संहिता' में 'केतु चार' अध्याय लिख प्रारंभ से तब तक का धूमकेतु संबंधी विस्तृत ब्यौरा दिया है। आधुनिक खगोल विज्ञान भी 'धूमकेतु' के अस्तित्व से अनभिज्ञ नहीं है। धूमकेतु का अस्तित्व हमेशा अन्तरिक्ष में आंका गया है, और उसके आने तथा जाने के क्रम को निर्धारित किया गया या खोजा गया है। हैली नामक कॉमेट का क्रम 75 वर्ष जाना गया है। लेकिन प्राचीन समय से आज तक के खगोल विज्ञानियों के पास इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि कोई 'पुच्छलतारा' अग्नि की लपटों को समेटते दौड़ता हुआ भी देखा जा सकता है। 'धूमकेतु के अस्तित्व की नई संभावनाएं' नामक पुस्तक इस बात को रेखांकित करती हैं। सन् 1995-96 में दो धूमकेतु 'हैली बोप्प' और 'हयाकुता' विश्व के सामने आए और इस अध्ययन को सशक्त आधार प्रदान कर गए। धूमकेतु के विखण्डित अवशेषों से पिण्ड बने, जो करीब 11 दर्ज किए गए, पर उन्हें कृत्रिम उपग्रह कह कर दरकिनार कर दिया गया। इनके अवशेषों से कुछ विस्फोट (चरारे शरीफ) तथा (ओकला हामा) हुए, पर सब नजर अन्दाज। यह भी घोषणा रही कि सन् 2010 से 2020 के बीच पुनः अन्तरिक्ष पिण्ड आएगा, जो 'मंगल ग्रह' पर गिर सकता है या उसका चन्द्रमा बन सकता है। परन्तु किसी को फिक्र नहीं। आज 2014 तथा 2019 में अन्तरिक्षीय पिण्ड के आने के संकेत हैं। 'धूमकेतु के अस्तित्व की नई संभावनाएं' इसी सतत् अध्ययन का परिणाम है।

प्राकृतिक मच्छर निरोधक

अमोल कलंबे एवं वैभव पट्टलवार
सी.वी. रमन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, नागपुर

सारांश

आज के मच्छर निरोधक मच्छरों से ज्यादा मानव के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। यह मच्छर निरोधक पूरी तरह से रसायनों से बने हैं जो मानव की सेहत के लिए हितकर नहीं हैं। परीक्षणों से यह प्रमाणित हो गया है, फिर भी ऐसे विषैले उत्पादन आज घर-घर में इस्तेमाल हो रहे हैं। इसी दिशा में एक भरसक प्रयास है "प्राकृतिक मच्छर निरोधक" उत्पादन। यह उत्पादन न केवल संपूर्ण रूप से प्राकृतिक है बल्कि सस्ता और सुरक्षित भी है। उत्पादन में इस्तेमाल होने वाला गाय का गोबर किसानों को आसानी से बड़ी मात्रा में उपलब्ध हो सकता है जिससे कि वह इस उत्पादन को एक सह-उद्योग बनाकर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो सकते हैं। यह उत्पादन बेरोजगार नौजवानों और महिलाओं को न्यूनतम लागत में एक उत्तम रोजगार उपलब्ध करा सकता है जो इसकी एक महत्वपूर्ण देन होगी। इस उत्पादन के कॉयल तथा द्रवरूप (लिक्वीडेटर) बनाने की दिशा में प्रयास जारी है।

प्राचीन भारत में भौतिक विज्ञान

कैलाश एवं कृष्ण मूर्ति राजू
भौतिकी विभाग, ब्रह्मानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राठ, हमीरपुर, उ.प्र. 210 431

सारांश

हममें से अधिकांश लोग यह समझते हैं कि विज्ञान का उद्भव और विकास पश्चिमी देशों में ही हुआ है और हमारे पूर्वजों को विज्ञान का कोई ज्ञान नहीं था। परन्तु वास्तविकता यह है कि प्राचीन भारत मात्र धर्मदर्शन के क्षेत्र में ही नहीं अपितु विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में भी अग्रणी था। प्राचीन भारत की विज्ञान संबंधी जानकारी अनेक संस्कृत ग्रंथों में मौजूद है, जिनमें जड़ तथा चेतन जगत के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। इससे ज्ञात होता है कि भारत की प्राचीन वैज्ञानिक और तकनीकी धरोहर अत्यन्त समृद्ध है। प्रस्तुत लेख में प्राचीन भारत के भौतिक विज्ञान की उपस्थिति, प्रगति एवं उपलब्धियों का विस्तृत अध्ययन किया गया है। प्राचीन भारत में दिक्, काल, पदार्थ तथा ऊर्जा की अवधारणाओं के साथ-साथ यांत्रिकी, खगोलिकी, प्रकाशिकी तथा वैद्युतिकी की प्रगति पर सप्रमाण प्रकाश डाला गया है। भारतीय तथा पश्चिमी विज्ञान दृष्टियों की भिन्नता को भी संक्षेप में रेखांकित किया गया है।

कार्बेट टाइगर रिजर्व, उत्तरांचल के अलवणीय जल में शैवालों की विविधता

रिमझिम खरे एवं एम.आर. सुशीला*
शैवाल विभाग, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

सारांश

कार्बेट टाइगर रिजर्व (सी.टी.आर.) भारतीय महाद्वीप का राष्ट्रीय उद्यान है, जो कि जैविक मण्डल के शिवालिक तराई में स्थित हिमालय की श्रृंखलाओं से घिरा हुआ है। इस क्षेत्र में विशेष रूप से हिमालय के जीव-जन्तुओं का समूह पाया जाता है। किन्तु इस क्षेत्र में जलीय शैवालों की उपस्थिति की कोई निश्चित सूचना प्राप्त नहीं है। प्रस्तुत पत्र बहते जल प्रवाह में शैवालों के अध्ययन का परिणाम है। शैवालीय योग में कुल 28 जातियां और 41 प्रजातियां पायी गयी हैं। जिनमें 11 नील हरित शैवाल, 10 हरित शैवाल, 20 डायटम्स की प्रजातियां प्राप्त हुयी हैं। इस क्षेत्र से हरित शैवाल में *राइजोक्लोनियम* एवं *स्पाइरोगायरा* अधिकतम पाये गये हैं। प्रस्तुत लेख में अलवणीय जल के शैवाल का मूल्यांकन किया गया है।

गंगटोक के अलवणीय जल में शैवालीय पादप जात

किरण टोप्पो एवं एम.आर. सुशीला*
शैवाल विभाग, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ-226001

सारांश

भारत के उत्तर-पूर्वी भाग में स्थित सिक्किम राज्य की राजधानी गंगटोक है। यह उच्च हिमालय पर्वतीय क्षेत्र में आता है। इस शहर में शैवालों का वितरण एवं विविधता का अध्ययन करने के लिये कुल 23 शैवालों के नमूने एकत्रित किये गये। ये विभिन्न जलीय वातावरण जैसे— तालाब, छोटे-छोटे झरने, खाइयों व नमीयुक्त स्थलों से एकत्रित किये गये। इन शैवालों के सूक्ष्म अध्ययन के दौरान 16 हरित शैवाल, 8 सुनहरे-भूरे शैवाल एवं 1 पीला हरा शैवाल पाया गया। जिसमें हरित शैवाल *कोसमेरियम पेडियास्ट्रम उसिस्टिस* एवं सुनहरे-भूरे शैवाल *यूनोटिया, सिम्बेला* बहुलता में पाये गये। जैंथोफाइसी वर्ग की सिर्फ एक जाति *वाऊचीरिया* पायी गयी जिसका विस्तृत वर्णन इसमें दिया गया है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में वृद्धावस्था की विसंगतियों का विवेचन एवं उन्हें कम करने हेतु प्रस्तावित कार्य योजना

भवेश्वर सिंह
समस्तीपुर कॉलेज, समस्तीपुर (बिहार)

सारांश

चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में आयी क्रांति से बेहतर स्वास्थ्य सुविधा सुनिश्चित हुई है। इसका सुपरिणाम यह हुआ है कि विगत वर्षों में मनुष्यों के औसत जीवनकाल में आशातीत वृद्धि हुई है। संयुक्त राष्ट्र के एक आकलन के अनुसार वृद्धों की आबादी 2000 में 77 मिलियन से बढ़कर 2020 तक 141 मिलियन होने की संभावना है।

शरीर पर बढ़ते उम्र के प्रभावों के अध्ययन के आधार पर जीवशास्त्रियों ने यह पाया कि प्रौढ़ावस्था में प्रवेश के साथ ही अनेकानेक ह्रासात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इनका सीधा प्रभाव उनकी मनःस्थिति एवं चिंतन शैली पर पड़ता है।

प्रस्तुत लेख में वृद्धावस्था की विसंगतियों पर भारतीय परिप्रेक्ष्य में विचार किया गया है तथा उन्हें कम करने हेतु विस्तृत कार्ययोजना प्रस्तुत की गई है। निष्कर्ष रूप में प्रस्तावित सुझावों को प्राथमिकता के तौर पर कार्यान्वित करने की अनिवार्यता पर बल दिया गया है। शोध पत्र का सार यह है कि बिना सार्थक प्रयास के बुढ़ापे को संतोषप्रद खुशहाल एवं आनंददायक नहीं बनाया जा सकता है।

पादप उत्पन्न कुछ कीटनाशियों की मूली (रेफेनस सेटाइवस) के मॉहूं के प्रति अनुक्रिया

वीणा पाण्डेय, ए. के. पाण्डेय एवं कु. पल्लवी सिंह
जन्तु विज्ञान विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया-206122
डी.ए.वी. कालेज, कानपुर (उ.प्र.)

सारांश

पादप उत्पन्न कुछ कीटनाशियों (जैसे *एकोरस केलेमस,* प्रकन्द; *ओसीमम बेसीलिकम,* बीज; *जेट्रोफा* करकस, पत्तियां) का मूल्यांकन क्रूसीफेरी पादपों पर संसाधित करके मूली *(रेफेनस सेटाइवस)* के मॉहूं के विरूद्ध किया गया। यह पाया गया कि *ओसीमम बेसीलिकम* सभी सान्द्रताओं पर उच्चतम मर्त्यता प्रदान करता है, *जेट्रोफा करकस* उससे कम जब कि *एकोरस केलेमस* सबसे कम प्रभावी रहता है।

परिज्वाला द्रव्यमान उत्सर्जन का अंतरिक्ष किरणों की तीव्रता परिवर्तन पर प्रभाव

पंकज कुमार श्रीवास्तव
भौतिक शास्त्र विभाग, शासकीय नवीन विज्ञान महाविद्यालय, रीवा (म. प्र.) 486 001
एवं
जी. एन. सिंह
भौतिक शास्त्र विभाग, सुदर्शन महाविद्यालय, लालगांव, जिला-रीवा (म. प्र.) 486 115

सारांश

परिज्वाला द्रव्यमान उत्सर्जन (Coronal Mass Ejection) अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा तथा द्रव्यमान को अन्तर्गृहीय क्षेत्र में प्रेक्षित करता है। वर्तमान में परिज्वाला द्रव्यमान उत्सर्जन की घटना पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र तथा अंतरिक्ष किरणों में परिवर्तन में एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में स्थापित हुआ है। प्रस्तुत प्रपत्र में 1996 से 2000 तक के 55 आभामण्डलीय परिज्वाला द्रव्यमान उत्सर्जन की घटनाओं को अंतरिक्ष किरणों पर लघु अवधि प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन से यह पाया गया कि वह आभामण्डलीय परिज्वाला द्रव्यमान उत्सर्जन की घटनायें जो भूचुम्बकीय आकस्मिक संक्षोभ उत्पत्ति से सम्बन्धित रहती है, अंतरिक्ष किरणों की तीव्रता में तीव्र एवं क्षणिक घटाव उत्पन्न करती है।

फोटोनिकी : 21वीं सदी की चुनौती

कुमार बलवंत सिंह
विश्वविद्यालय भौतिकी विभाग, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर 842 001

सारांश

विलियम शॉकले तथा उनके सहयोगियों जान वार्डीन तथा वाल्टर ब्रेटेन ने ट्रांजिस्टर का आविष्कार किया। इस आविष्कार से ही सूक्ष्म इलेक्ट्रॉनों को नियंत्रित करके उनसे काम लिए जाते हैं। इलेक्ट्रॉनों की जगह प्रकाश के क्वांटा यानी फोटोनों का इस्तेमाल किया जाना संभव हो गया है। इस नई तकनीक को फोटोनिकी कहते हैं। इस शोधपत्र में फोटोनिक क्रिस्टल, फोटोनिक बैंडगैप, फोटोनिक फाइबर इत्यादि की संचार एवं सूचना के क्षेत्र में अहम् भूमिका की चर्चा की गई है जो 21 वीं सदी के लिए चुनौती है।

सोयाबीन के साथ विभिन्न फसलों की अन्तः एवं मिलवा खेती से सोयाबीन के कीटों पर प्रभाव

नन्द किशोर बाजपेयी एवं इन्द्र नारायण गुप्ता
कृषि विज्ञान केन्द्र, अन्ता-325 202 बारां (म. प्र. कृ. एवं प्रौ. वि. चि., उदयपुर)

सारांश

सोयाबीन राजस्थान के कोटा क्षेत्र की खरीफ की मुख्य फसल है। दलहनी फसल होने के बावजूद यह कृषकों द्वारा मुख्य तौर से तेल के लिए उगायी जाती है। सोयाबीन में पोषण तत्वों की अधिकता एवं पत्तियों के गहरे रंग के कारण इस पर विभिन्न प्रकार के कीटों का आक्रमण होता है। बुवाई से लेकर भण्डारण तक इसमें 275 प्रकार के कीट आक्रमण करते हैं जिनमें 126 तरह के कीट अकेले पत्तियों को नुकसान पहुंचाते हैं। सन् 2000 में सोयाबीन में तम्बाकू की सूड़ी से व्यापक नुकसान हुआ जिसने पूरे खण्ड की सोयाबीन को नष्ट कर दिया। कृषकों ने इस कीट को नियंत्रित करने के लिए विभिन्न प्रकार के उपलब्ध कीटनाशकों का प्रयोग किया लेकिन यह कीट नियंत्रण से परे महामारी में बदल गया। फलस्वरूप सोयाबीन कीटों के नियंत्रण में अकेले कीटनाशकों के प्रयोग के प्रति कृषकों का मोह भंग हुआ। साथ ही ऐसी पद्धति की खोज की आवश्यकता भी महसूस हुई जो प्राकृतिक रूप से कीटों के नियंत्रण के साथ-साथ मित्र कीटों के संरक्षण एवं गुणन में भी सहयोगी सिद्ध हो सके। संदर्भों से यह जानकारी मिली है कि सोयाबीन के साथ ज्वार लगाने से लेपिडॉप्टेरा गण के अनेक कीटों के प्रबन्धन में मदद मिलती है। इसी के अनुरूप सन् 2001 में खरीफ में सोयाबीन के साथ ज्वार, मक्का एवं तिल की अन्तः एवं मिलवा खेती के प्रयोग किए गये। प्रस्तुत शोधपत्र में सोयाबीन के साथ विभिन्न फसलों की अंतः एवं मिलवा खेती से सोयाबीन के कीटों पर होने वाले प्रभाव का वर्णन उपलब्ध है।

तकनीकी हस्तांतरण का बाजरे की उन्नत कृषि क्रियाओं के अंगीकरण एवं उत्पादकता पर प्रभाव

भगवान सिंह एवं राजसिंह
केन्द्रीय रूक्ष क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर 342 003

सारांश

बाजारा राजस्थान की प्रमुख खाद्यान्न फसल है। इसकी खेती लगभग 39.45 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है जिससे 13.01 लाख टन उत्पादन होता है। बाजरे की उत्पादकता 3.41 Q/ha है जो कि देश में बाजरा उगाये जाने वाले राज्यों तथा देश की उत्पादकता की तुलना में काफी कम है। बाजरे का उत्पादन बढ़ाने के लिए कृषि अनुसंधान संस्थानों एवं कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा उन्नत तकनीकों का विकास किया गया है। ये तकनीकें बाजरे का उत्पादन बढ़ाने में काफी सहायक सिद्ध हुई हैं। लेकिन अनुसंधान संस्थानों द्वारा विकसित अधिकतर तकनीकों का किसानों द्वारा अंगीकरण नहीं किया गया है। तकनीकी हस्तांतरण कार्यक्रम उन्नत तकनीकों को किसानों तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है तथा तकनीकों के अंगीकरण द्वारा औसत उपज को बढ़ाया जा सकता है। इसी यथार्थता को ध्यान में रखते हुए यह अध्ययन किया गया।

सनाय में सिनोसाइड की मात्रा और उस पर हार्मोन तथा विटामिन सी का प्रभाव

धर्मवीर सिंह एवं ग्रीशचन्द श्रीवास्तव
पादप कार्यिकी विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली 110 012

सारांश

सनाय (*केसिया अंगुस्टीफोलिया* वाल्ह) प्राचीन काल से ही एक 'औषधि पौधे' के रूप में जाना जाता है। वेदों में इसका उल्लेख प्राचीनकाल से ही मिलता है। सनाय की पत्तियों तथा फलियों का चूर्ण बनाकर पेट के विभिन्न विकारों को दूरे करने में प्रयोग किया जाता हे तथा हरी पत्तियों को पीसकर चर्म रोगों के उपचार में लाभप्रद पाया गया है। इसमें सिनोसाइड नामक रसायन (एक प्रकार का ग्लाईकोसाइड) पाया जाता है। सिनोसाइड पीलिया, एनिमिया, टाईफाइड तथा मलेरिया बुखार की भी दवाइयां बनाने में भी काम आता है। भारत में पत्तियों तथा फलियों को विदेशों में निर्यात करके अरबों रुपये की विदेशी पूंजी अर्जित की जाती है। भारत सनाय का प्रमुख उत्पादक देश है और अरब, जापान तथा जर्मनी आदि देशों को निर्यात करता है। प्रस्तुत पत्र में सनाय में सिनोसाइड की मात्रा तथा उस पर हार्मोन व विटामिन सी के प्रभाव पर चर्चा की गई है।

अरहर में पुष्प कलिका तितली नियंत्रण पर विभिन्न कीटनाशियों की क्रियाशीलता का तुलनात्मक अध्ययन

डी. एन. मिश्रा, एल. आर. सिंह एवं कमलेश कुमार
सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
अनुसंधान केन्द्र, नगीना (बिजनौर) 246 762

सारांश

वर्ष 2000-2001 एवं 2001-2002 के दौरान पुष्प कलिका तितली (Catocrysops Cnejus Fab) पर कुछ प्रचलित कीटनाशकों के प्रभाव का अध्ययन करने से ज्ञात हुआ कि वर्ष 2000-01 के दौरान जहां मोनोक्रोटोफॉस 0.05% और साइपरमेथ्रिन 0.04% का छिड़काव किया गया वहां पर नियंत्रित उपचार की अपेक्षा सुंडी की संख्या में अधिकतम कमी पाई गयी। दूसरे वर्ष 2001-02 के दौरान मोनोक्रोटोफॉस 0.05%, साइपरमेथ्रिन 0.04% तथा क्लोरपायरिफॉस 0.07% वाले उपचार में सबसे अधिक उपज क्रमशः 16.4 तथा 15.8 Q/ha प्राप्त हुई थी। अतः दोनों वर्षों के परिणामों से यह ज्ञात होता है कि अरहर की पुष्प कलिका तितली के नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफास 0.05% और साइपरमेथ्रिन 0.04% सबसे उत्तम कीटनाशक हैं।

गेहूं के अनावृत कंडुवा का *ट्राइकोडर्मा विरेन्स* और कार्बाक्सीन द्वारा एकीकृत प्रबन्धन

गोपाल सिंह, कमलेश कुमार एवं अशोक कुमार
सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
अनुसंधान केन्द्र, नगीना (बिजनौर) 246 762

सारांश

ट्राइकोडर्मा वीरेन्स, एक स्थाई और सक्षम जैविक कारक है जिसका प्रयोग अनेकों पौधों के रोग कारकों को नियंत्रित करने के लिए किया गया। गेहूं का अनावृत्त कंडुवा जो कि *अस्टीलैगो सेगाटम उपजाति ट्रिटीसाई* के कारण होता है, का प्रभावी नियंत्रण *ट्राइकोडर्मा विरेन्स* के स्पोर पाउडर के प्रयोग और/या कार्बाक्सीन के बीज उपचार के रूप में पाया गया। प्रत्येक दशा में अनावृत कंडुवा संक्रमण को कम करने में एकीकृत प्रबन्धन क्रमशः रसायन, जैविक प्रबन्धन साथ ही साथ नियंत्रण के परिप्रेक्ष्य में (30-35%) अधिक रहा। उपज वृद्धि की दृष्टि से, एकीकृत प्रयास से वर्ष 2000-2001 और 2001-2002 में अन्य उपचार एवं अनुपचारित की तुलना में क्रमशः 9.8 से 14% तक अधिक उपज प्राप्त हुई।

A, B, O रूधिर वर्गों का बरेली की सामान्य जनसंख्या में संख्यात्मक वितरण

सोनल अग्रवाल, सुनीता शर्मा और डी. सी. दुबे
पेस्ट एंड पैरासाइट रिसर्च लैब
जन्तु विज्ञान विभाग, बरेली कालेज, बरेली

सारांश

उपलब्ध अध्ययन में A, B. O रूधिर वर्गों का बरेली की सामान्य जनसंख्या में संख्यात्मक वितरण दिया गया है तथा रूधिर वर्गों का निरीक्षण 'रैपिड स्लाइड टेस्ट' द्वारा किया गया। 250 व्यक्तियों में रूधिर वर्ग 'B' 106 (42.20%), 'O' 86 (34.30%), 'A' 53 (21.30%) तथा 'AB' 6 (2.20%) पाया गया। Rh फैक्टर का रूधिर वर्गों में वितरण इस प्रकार पाया गया है:
'B' 106 (42.20%) [B^+ 93 (37.30%) तथा B^- 13 (4.90%)], 'O' 86 (34.30%) [O^+ 82 (32.80%) तथा O^-4 (1.50%)], 'A' 53 (21.3%) [A^+ 48 (19.30%) तथा A^-5 (2%)], 'AB' 6 (2.20%) [AB^+ 6 (2.20%) तथा AB^- (0%)] अर्थात् कुल व्यक्तियों में रूधिर वर्ग 'B' अधिकतम हैं और रूधिर वर्ग 'AB' न्यूनतम है।

समन्वित उर्वरक प्रबंधन का धान की फसल पर प्रभाव

आशुतोष श्रीवास्तव, जी. के. श्रीवास्तव एवं एस. के. गाईन
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

सारांश

यह अनुसंधान खरीफ के समय सन् 2000 में यादृच्छिक प्रखंड विधी में तीन पुनरावृत्तियों के अंतर्गत किया गया जिसमें 12 उपचारकों के अंतर्गत अकार्बनिक उर्वरक, कार्बनिक उर्वरक व हरी-खाद के विभिन्न संयोजनों के प्रभाव का अध्ययन किया गया जिसमें सर्वाधिक उपज (6.45 टन/हे.) उपचारक एफ$_8$ (50% संस्तुत उर्वरक मात्रा +50% नत्रजन (सनहेंप) के अंतर्गत प्राप्त हुआ। उपरोक्त उपचारक एफ$_8$ के अंतर्गत प्रभावी कंसों की संख्या (239.69 कंसे/मी.^{2}), बालियों में दानों की संख्या (122.03 दाने/बाली) बालियों में उच्च अंकुरण क्षम दानों की संख्या (112.41 दाने/बाली) सर्वाधिक प्राप्त हुई। सर्वाधिक सकल लाभ (38403 रू/हे.) तथा शुद्ध लाभ (25563 रू./हे.) भी 50% संस्तुत उर्वरक मात्रा +50% नत्रजन (सनहेंप) के अंतर्गत प्राप्त हुआ।

5 मैगावाट उच्च क्षमता वाले क्लायस्ट्रॉन के स्वदेशी डिजाइन का तकनीकी विकास एवं अनुप्रयोग

ओंकार सिंह लाम्बा, ललित मोहन जोशी, अरुणा शर्मा, सुभाष नांगरू एवं वी वी पी सिंह
इलेक्ट्रॉन नलिका विभाग
केन्द्रीय इलेक्ट्रॉनिकी अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान, पिलानी (राजस्थान) 333031

सारांश

सूक्ष्मतरंग अभियांत्रिकी के क्षेत्र में उच्च क्षमता वाले वाल्व का अत्यंत महत्वपूर्ण उपयोग है। क्लायस्ट्रॉन उच्च क्षमता का सूक्ष्मतरंग वाल्व है जिसका उपयोग दूरसंचार, प्रतिरक्षा और त्वरण प्रणालियों तथा अनेक क्षेत्रों में रेडियो आवृत्ति स्रोत की तरह किया जाता है। सीरी, पिलानी में 5 मैगावाट उच्च क्षमता की क्लायस्ट्रॉन तकनीकी का विकास किया गया है जिसका उपयोग प्रगत प्रौद्योगिकी केन्द्र (CAT), इन्दौर ने सिंक्रोट्रॉन विकिरण स्रोत में किया है। इस लेख में क्लायस्ट्रॉन वॉल्व के स्वदेशी डिज़ाइन, तकनीकी विकास एवं सफलतापूर्वक परीक्षण की समीक्षा की गई है।

जल संग्रहकों (डबरियों) से अंतःश्रवित जल रोकने के उपाय

बी. एस द्विवेदी, एम. के. बारसकर एवं ओ. पी. दुबे
जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म. प्र.)
*क्षेत्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र डिण्डौरी (म. प्र.)

सारांश

फसलों की वृद्धि और विकास के लिए भूमि में नमी आवश्यक है। प्रतिवर्ष वर्षा एक समान नहीं होती, कभी अतिवृष्टि, असमय वृष्टि व कभी बहुत ही कम। इसीलिये कभी सूखा तो कभी बाढ़ का सामना करना पड़ता है। शुष्क क्षेत्रों में वर्षा की कमी होने पर फसलोत्पादन हेतु पानी देना अति आवश्यक हो जाता है। वर्षाकाल में काफी मात्रा में जल अपवहन व अंतःश्रवण प्रक्रियाओं द्वारा नदी-नालों में बहकर व्यर्थ चला जाता है। यदि इस अपवहित जल को संग्रहीत कर उपयोग किया जाये तो फसलोत्पादन में आशातीत सफलता प्राप्त होती है। राष्ट्रीय कृषि तकनीकी परियोजना के तहत जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर द्वारा संचालित आदिवासी कृषि अनुसंधान केन्द्र, डिण्डौरी (म. प्र.) में चल रहे वर्षा जल प्रबंधन कार्यक्रम के अंतर्गत अपवहित जल को सुदूर क्षेत्रों से बटोरकर डबरियों में संचित किया जाता है। इन डबरियों से अंतःश्रवण द्वारा अत्यधिक मात्रा में हो रही जल की हानि को नियंत्रित करने हेतु उचित अस्तरीकरण का चुनाव भी इस कार्यक्रम में शामिल है। डबरियों के अस्तरीकरण हेतु पदार्थों का चयन उनकी लागत, स्थानीय उपलब्धता, मृदा के गुण तथा उसकी प्रभावशीलता पर आधारित है। अंतःश्रवित जल रोकने हेतु पांच उपचार प्रयोग में लाये गये। अतः उक्त विधियों (पदार्थों) को आवश्यकतानुसार अपनाकर डबरियों से हो रहे अंतःश्रवित जल की हानि को नियंत्रित किया जा सकता है जिससे डबरियों में जल का संरक्षण अधिक समय तक किया जा सकता है और आवश्यकतानुसार फसलों को उपलब्ध कराकर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

कानपुर महानगर में बढ़ता आधुनिकीकरण, पर्यावरण प्रदूषण का प्रवाह एवं संरक्षण

शारदा त्रिपाठी, संगीता अवस्थी एवं चन्द्रलेखा सिंह
जन्तु विज्ञान विभाग आ. अन. दे. न. वि.
म. म. हर्षनगर, कानपुर

सारांश

कानपुर महानगर में प्रदूषण के भंयकर परिणाम सामने आ रहे हैं। वायु में लैड, कार्बन, नाइट्रोजन व सल्फर के आक्साइडों तथा धूल की मात्रा लगातार बढ़ती जा रही है और मिट्टी में रेडियो सक्रियता व कीटनाशकों का भार खाद्य श्रृंखला पर भारी होता जा रहा है। सभी प्रकार का प्रदूषण फैलाने में शहरीकरण की प्रमुख भूमिका है जिसमें औद्योगिक इकाइयों व वाहनों की संख्या में नित्य-प्रति होने वाली वृद्धि प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। जनसंख्या के बढ़ने से भी घरेलू ईंधन और कूड़े करकट की मात्रा में वृद्धि हो रही है। आजकल की नई पीढ़ी में फैलता धूम्रपान भी एक व्यक्तिगत वातावरणीय प्रदूषण फैलाता है। वातावरण में फैलने वाला प्रदूषण पौधों, मनुष्यों, भौतिक आकार, स्ट्रेटोस्फियर व ओजोन परत पर अपना विपरीत प्रभाव डाल रहा है। जिसका हम अपने दैनिक जीवन में होने वाले परिवर्तन तथा प्रभावों के द्वारा अध्ययन कर सकते हैं। इससे बचने के लिए हर संभव प्रयास करने होंगे। इसको नियंत्रण में करने के लिए मुख्यतया दो तरीके हैं: पहला तकनीकी रोक व दूसरा वातावरण को सुरक्षित रखने के लिए बनाये गये नियम कानूनों का पालन करना।

किशनगढ़ तहसील (अजमेर) के पेयजल में फ्लोराइड की अधिक मात्रा एवं फ्लोरोसिस - एक अध्ययन

सी. पी. पोखरना*, शर्मिला पोखरना** करुणा शोभावत***
*प्रवक्ता (रसायन विज्ञान) राजकीय महाविद्यालय, किशनगढ़ (अजमेर-राजस्थान)
**रिसर्च फैलो, मालवीय राष्ट्रीय अभियांत्रिकी संस्थान, जयपुर (राजस्थान)
***प्रवक्ता (प्राणी विज्ञान) राजकीय महाविद्यालय, किशनगढ़ (अजमेर-राजस्थान)

सारांश

अजमेर जिले की किशनगढ़ तहसील के विभिन्न गांवों के विभिन्न जल स्रोतों से चार बार में पेयजल के 256 नमूने लिए गए। ये सर्वेक्षण ऋतु परिवर्तन के अनुसार किए गए तथा फ्लोराइड की सान्द्रता में परिवर्तन का अध्ययन किया गया। फ्लोराइड की सान्द्रता 0.2 से 6.9 mg/L के बीच थी। रुपनगढ़ ग्राम के पेयजल स्रोतों में फ्लोराइड की मात्रा सर्वाधिक पाई गई तथा वहां के निवासियों में फ्लोराइड के गंभीर प्रभाव देखे गये।

सोयाबीन की विभिन्न जातियों का रासायनिक संघटन एवं उसमें विद्यमान प्रोटीन

राजेश सिंह सेंगर
रसायन विभाग, कैम्पस विद्यालय, गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, पंतनगर, ऊधमसिंह नगर (उत्तरांचल)

सारांश

परंपरागत विधियों के आधार पर सोयाबीन की 21 विभिन्न जातियों का परीक्षण प्रयोगशाला में करने से ज्ञात हुआ कि उनमें अधिकतम 48.27% कच्ची प्रोटीन की मात्रा उपस्थित थी। विभिन्न जातियों में कच्ची वसा का प्रतिशत 15.28 से 22. 61 पाया गया जो कि टी.- 49 में निम्नतम और पी. के. 1092 जाति में अधिकतम पाई गई। सोयाबीन की टी.-49 जाति में कच्चे रेशे की अधिकतम मात्रा (8.97%) पाई गई थी। सोयाबीन की विभिन्न जातियों में खनिज पदार्थ का प्रतिशत निम्नतम (5.3%) कालीतूर और अधिकतम (6.74%) पी. के.-262 में पाया गया। कैल्शियम और फास्फोरस खनिजों की पर्याप्त मात्रा सोयाबीन की लगभग सभी जातियों में पाई गई थी। फास्फोर इमेज एनालाइजर के आधार पर विभिन्न जातियों में ट्रिप्सिन अवरोधक की निम्नतम मात्रा पी. के.- 1029 में तथा अधिकतम पी. के. - 1042 में पाई गई। बाजार में अधिक मात्रा में उपलब्ध सोयाबीन के दानों को दलने के पश्चात् ओवन में 100° C ताप पर 10 मिनट के लिए गर्म किया गया। गर्म करने पर सोयाबीन में ट्रिप्सिन की मात्रा जो 20.5 टी. यू. आई. /mg थी वह घटकर मात्र 4. 5 टी. यू. आई. /mg रह गई। इससे सिद्ध होता है कि उच्च प्रोटीन एवं वसा तथा सामान्य कार्बोहाइड्रेट एवं भस्म की मात्रा वाले सोयाबीन दानों को हानिकारक ट्रिप्सिन अवरोधक से मुक्त करके पौष्टिक विशुद्ध शाकाहारी आहार बनाया जा सकता है।

धान-गेहूं फसल चक्र में यूरिया की उर्वरकता पर विषमचक्रीय आइसोऑक्साज़ोल नियामकों का प्रभाव

जे. पी. शर्मा*, एच. के. तनेजा एवं एस. एस. तोमर
कृषि रसायन संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110 012

सारांश

विकासशील देशों में नाइट्रोजन का स्रोत यूरिया ही सर्वाधिक मात्रा में उपयोग में लाया जाता है। लेकिन शोचनीय विषय यह है कि इसका एक-तिहाई भाग (30 से 35%) ही पौधों द्वारा उपभोगित होता है और शेष दो-तिहाई भाग वाष्पीकरण, विनाइट्रीकरण अथवा निक्षालन द्वारा मृदा में विलुप्त हो जाता है। जिससे कृषकों को न केवल आर्थिक हानि होती है अपितु वातावरण और भौमजल भी कहीं-कहीं प्रदूषित होता है। नाइट्रोजन में होने वाली गिरावट को संश्लेषित नियामकों द्वारा काफी हद तक रोका जा सकता है। यह नियामक यूरिया के जल-अपघटन और तदर्थ विनाइट्रीकरण को नियंत्रित करते हैं जिससे मृदा में नाइट्रोजन के योगीकरण को बढ़ावा मिलता है तदर्थ पौधे बाद में भी उसका प्रयोग कर सकते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में प्रयोगशाला में संश्लेषित कुछ विषमचक्रीय कार्बनिक रसायनों का नाइट्रोजन नियामकों के रूप में प्रयोग किया गया है। यूरिया की 5% मात्रा में इन नियामकों के प्रयोग से पौध घर में ध ाान की फसल में पाया गया कि इनके प्रयोग से न केवल दाने की पैदावार में वृद्धि होती है अपितु नियंत्रित उपचार की तुलना में कुल शुष्क पदार्थ की पैदावार भी 20 से 50% तक बढ़ जाती है। यह रसायन अवशोषित गेहूं की फसल में भी वृद्धि करते हैं और भूमि का में ह्रास भी नहीं होने देते हैं। साथ ही धान एवं गेहूं दोनों ही फसलों में नाइट्रोजन उपलब्धि भी 20 से 40% तक बढ़ा देते हैं। संक्षेप में कहा जाए तो इन नियामकों के उपयोग से बहुत नहीं तो एक सीमा तक खाद के अवांछित ह्रास को कम किया जा सकता है। इन प्रयोगों से यह भी ज्ञात हुआ है कि नियामकों का प्रयोग अमोनिएकल नाइट्रोजन से नाइट्रेट बनने की प्रक्रिया को नियंत्रित करता है और साथ ही पौधों की बढ़त के लिए हानिकारक नाइट्राइट की मात्रा को भी नहीं बढ़ने देता है।

विषमचक्रीय थायाजोलिडिन्स एवं उसके एराइलिडिन्स यौगिकों की नयी श्रेणी का निर्माण तथा प्रतिफफूंदीय, प्रतिप्रदाहात्मक एवं मात्रात्मक

संरचनात्मक क्रियाशीलता सम्बन्ध सक्रियतायें

एस. डी. श्रीवास्तव* एवं सौम्या श्रीवास्तव**
*रासायनिक संश्लेषण एवं जैविकीय प्रयोगशाला, रसायन विभाग
डॉ हरीसिंग गौर विश्वविद्यालय (पूर्व नाम सागर यूनिवर्सिटी), सागर-470 003 (म. प्र.)
**रसायन विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, इलाहाबाद 211 002 (उ. प्र.)

सारांश

5-नाइट्रोबेन्जइमीडाजोल एवं एथिल क्लोरो एसीटेट को अधोवाहित परिस्थिति में इलेक्ट्रॉन स्नेही प्रतिस्थापन से एथिल - (5-नाइट्रोबेन्जइमीडाजोल) - एसीटेट (1) प्राप्त होता है जिसका हाइड्राजीन के साथ अमीनोकरण करने पर एसीटोहाइड्राजाइडो- 5-नाइट्रोबेन्जइमीडाजोल (2) मिलता है। यौगिक (2) को विभिन्न प्रतिस्थापित कार्बोनिल्स के साथ संघनित करने पर एराइलिडिन- (5-नाइट्रोबेन्जइमीडाजोल)-एमाइडिल (3) प्राप्त किया। यौगिक (3) को थायोग्लाइकोलिक अम्ल के साथ अभिक्रियित करने से (प्रतिस्थापित एरिल) - 3- (5 - नाइट्रोबेन्जइमीडाजोल) - एसीटाएमाइडिल - 4 - आक्सो-थायाजोलिडिन्स (4) प्राप्त हुआ। यौगिक (4) को पुनः विभिन्न प्रतिस्थापित कार्बोनिल्स से सोडियम की उपस्थित में अभिक्रिया कराने से (प्रतिस्थापित एरिल) - 3 -(5 - नाइट्रोबेन्जइमीडाजोल)-एसीटाएमाइडिल -5-एराइलिन्डिस-4 आक्सो-थायोजोलिडिन्स (5) प्राप्त हुआ। यौगिकों की शुद्धता का आकलन वर्णक्रम अभिलेखीय पतली परत विधि से किया गया और संरचनात्मक पुष्टि स्पेक्ट्रोमिति और रासायनिक विश्लेषण द्वारा की गयी। उपर्युक्त विधियों से प्राप्त सभी यौगिकों का प्रतिफफूंदीय एवं प्रतिप्रदाहात्मक अनुवीक्षण करने पर जैविकीय सक्रियता दर्शायी गयी। जैविकीय रूप से सक्रिय यौगिकों का क्यू. एस. ए. आर का अध्ययन कम्प्यूटर की सहायता से किया जा रहा है।

प्राकृतिक वाष्पशील तेल एवं उनकी उपयोगिताएं

पी. सी. पंत एवं ए. के. सक्सेना
डी. एम. एस. आर. डी. ई., कानपुर

सारांश

प्रकृति में असंख्य ऐसी वनस्पतियां पाई जाती हैं जो कि पर्यावरण में निरंतर गंध का प्रवाह करती रहती हैं। इन वनस्पतियों को सगंध पौधों (aromatic plants) के नाम से जाना जाता है। गंध की अनुभूति हमें इन वनस्पतियों में विद्यमान वाष्पशील तेल के कारण होती है। इन वाष्पशील तेलों को 'एसेन्शियल आयल' कहा जाता है। रासायनिक रूप से एसेन्शियल या वाष्पशील तेल जटिल रासायनिक यौगिकों का मिश्रण होता है जिसमें टर्पीन हाइड्रोकार्बन (terpene hydrocarbon) एवं उनके व्युत्पन्न यौगिक (derivatives) होते हैं। इनका रासायनिक ढांचा (chemical skeleton) -C_5H_8- से बना होता है। इनका रासायनिक सूत्र $(-C_5H_8-)_n$ होता है। व्युत्पन्न यौगिकों में विभिन्न क्रियात्मक समूह (functional groups) जैसे -OH, -CHO, >C=O, -COOH इत्यादि होते हैं। उदाहरणस्वरूप मेंथाल, जिरेनियाल, लिनेलूल, सिट्रोनिलाल, मिरसीन, मिथाइल चेविकाल, पिनीन, लेवेन्ड्यूलाल इत्यादि यौगिक, इन वाष्पशील तेलों में पाए जाते हैं। प्रस्तुत पत्र में प्राकृतिक वाष्पशील तेलों व उनकी उपयोगिताओं पर प्रकाश डाला गया है।

डबरियों में अपवहित व अंतःश्रवित जल का विश्लेषण

एम. के. बारसकर, ओ. पी. दुबे एवं बी. एस. द्विवेदी
आदिवासी कृषि अनुसंधान केन्द्र, डिण्डौरी (म. प्र.)

सारांश

वर्षाकाल के दौरान वर्षाजल का अधिकांश भाग अपवहन एवं अंतःश्रवण प्रक्रियाओं द्वारा नदी-नालों की सहायता से समुद्र तक पहुंचता है। अपवहित जल का उपयोग कृषि उपज में वृद्धि हेतु भिन्न-भिन्न जल संग्रहण संरचनाओं द्वारा यथास्थान रोक कर किया जाता है। डबरियों द्वारा अवरूद्ध अपवहित जल का अधिकांश भाग अंतःश्रवण (सीपेज) प्रक्रिया द्वारा ढलान युक्त निचली भूमि सतह से होकर नदी-नालों में शामिल होता है जो खरीफ के मौसम में उगाई जाने वाली फसलों की फलोत्पादकता में वृद्धि करता है।

शोध के अध्ययन हेतु पहाड़ी क्षेत्र के अंतर्गत ग्राम-घानाघाट, डिण्डौरी (म. प्र.) के एक छोटे जल ग्रहण का सर्वेक्षण किया गया। जिसमें दो डबरियां क्रमशः फेरेटिक एवं फ्लक्सियल मृदायुक्त भूमि पर बनाई गईं। डबरी संरचनाओं का कंटूर सर्वेक्षण कर क्षेत्रफल, आयतन तथा अंतःश्रवण जल दर संबंध - सूत्रों का निर्धारण किया गया। डबरियों में समाहित सतह जल के आधार पर अभिकलित साप्ताहिक आंकड़ों का विश्लेषण उक्त संबंध सूत्रों द्वारा कर अपवहित व अंतःश्रवित जल दर मात्रा का निर्धारण किया गया।

पारंपरिक तकनीकी ज्ञान एवं जैव विविधता : आदिवासीय अध्ययन

एम.के बारसकर* बी. एस. द्विवेदी* एवं सुनीता कुशवाहा**
*जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म. प्र.)
**जड़ी-बूटी प्रचार प्रसार एवं अध्ययन केन्द्र, समनापुर, डिण्डोरी (म. प्र.)

सारांश

मनुष्य हमेशा से किसी न किसी रूप में वृक्षों व पौधों पर निर्भर रहा है। यही नहीं परिवार की सुरक्षा मनुष्य व पशुओं के साथ-साथ पादपों की भी स्वास्थ्य सुरक्षा, मानव की आर्थिक वृद्धि का निर्वाहन, बहुमूल्य जैव विविधता एवं मानव सभ्यता का विकास आदि भी वानस्पतिक सम्पदा से जुड़े हैं। संभवतः मानव में स्थाई जीवन की लालसा से ही संयोजित कृषि का प्रार्दुभाव हुआ। संसाधन विहीन आदिवासी विभिन्न प्रकार की बीमारियों से छुटकारा पाने के लिए स्थानीय औषधियों पर निर्भर रहते है। प्रस्तुत शोध पत्र में स्थानीय पद्धतियों को पहचानने, गुणांकन करने एवं अभिलेखिकरण के साथ-साथ स्थानीय औषधियों के बारे में आदिवासियों के ज्ञान का भी अवलोकन किया गया। निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये डिण्डोरी (म. प्र.) जिले के समनापुर विकासखण्ड से बंदाछोर, नानडिण्डोरी एवं समनापुर गांवों को पूर्व निर्धारित तरीके के अध्ययन का क्षेत्र बनाया गया। अध्ययन से संबंधित जानकारी का संकलन सहभागिता उपगम्य, समूह चर्चा एवं व्यक्तिगत साक्षात्कार द्वारा किया गया। अध्ययन से विदित होता है कि यहां के आदिवासी विभिन्न प्रकार की बीमारियों से छुटकारा पाने के लिये स्थानीय औषधीय पौधों का उपयोग करते हैं।

धान-गेहूं फसल चक्र में सस्य क्रियाओं का उत्पादकता पर प्रभाव

जे. ए. खान, एम. एल. केवट, एस. पी. खुरचानिया एवं एस. बी. अग्रवाल

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर 482 004

सारांश

गेहूं फसल चक्र पर सस्य क्रियाओं के प्रभाव का अध्ययन सन् 2001-2002 एवं 2002-2003 में किया गया। प्रयोाग के परिणाम यह बताते हैं कि धान-गेहूं फसल चक्र से अधिकतम उत्पादन (100.45 Q/ha) खरीफ मौसम में मध्यम अवधि में पकने वाली धान की किस्म 'कांति' व रबी मौसम में जल्दी से पकने वाली गेहूं की किस्म 'लोक-1' की कास्त से प्राप्त हुआ। रोपाई वाली धान के बाद गेहूं को कतारों में बुवाई करने से 93.76 Q/ha उत्पादन प्राप्त हुआ, जो कि धान को कतारों में सीधी बुवाई करने के बाद गेहूं को कतारों में बोने की तुलना में व्यावहारिक रूप से बराबर था। इसी प्रकार, मुख्य पोषक तत्वों की 75% अनुमोदित मात्रा उर्वरकों +25% गोबर की खाद धान को और 100% अनुमोदित मात्रा उर्वरकों के माध्यम से गेहूं को दोनों फसलों को उर्वरक अकेले देने से 100% अनुमोदित मात्रा की तुलना में फसल चक्र की बिना उत्पादकता कम हुए मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में सुधार पाया गया।

परंपराओं में पोषण विज्ञान : मिथिलांचल का एक अध्ययन

ईशा सिन्हा

गृह विज्ञान विभाग, वीमेन्स कालेज, समस्तीपुर - 848 101

सारांश

बौद्धिक -सम्पदा के व्यापार तथा ज्ञानाधारित उद्योग के इस युग में भारत की समृद्ध परंपरागत ज्ञानप्रणाली भी अध्ययन का एक महत्वपूर्ण विषय बन गयी है। वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री तथा समाजशास्त्री अब ज्ञानाधारित अर्थव्यवस्था के साथ -परंपरागत ज्ञान की अर्थव्यवस्था विषयक मुद्दे पर भी चर्चा कर रहे हैं। भारत सरकार की 'विज्ञान तथा तकनीकी नीति 2003' दस्तावेज में भी इस ज्ञान क्षेत्र की पहचान तथा इसे विकसित करने पर बल दिया गया है। प्राचीन काल से ही विभिन्न क्षेत्रों, जैसे कृषि, भोजन, स्वास्थ्य, भूविज्ञान से संबंधित धारणायें, सामूहिक व्यवहार या वैचारिक आस्थायें मानव समाज में फैली हैं जो आज भी मान्य हैं तथा आज की आवश्यकताओं एवं विचारों के लिए प्रासंगिक भी हैं। विभिन्न क्षेत्रों की हमारी ये परंपरायें हमारे पारंपरिक ज्ञान की सहज अभिव्यक्ति हैं इसलिए परंपराओं में छिपे वैज्ञानिक तथ्यों को उजागर कर हम उसकी रक्षा भी कर सकते हैं और अपने ज्ञान का संवर्धन भी। प्रस्तुत पत्र में परंपराओं में पोषण विज्ञान को केन्द्र बिन्दु बताते हुए मिथिलांचल के एक अध्ययन को प्रस्तुत किया गया है।

पारिस्थितिक क्षेत्रों में भूउपयोग/वनस्पति के दीर्घकालिक अनुश्रवण हेतु सुदूर संवेदन एवं भौगोलिक सूचना तंत्र की उपयोगिता

सुनीत नैथानी

भारतीय वन्यजीव संस्थान, देहरादून

सारांश

हिमालय विश्व की नवीनतम पर्वत श्रृंखलाओं में से एक है। इस पर आज भी प्रकृतिजन्य एवं मानव द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से स्थिति विकट होती जा रही है। अतः संसाधनों का नियोजन एवं प्रबंधन की आवश्यकता पर बल देना अत्यन्त आवश्यक है। वन्य जीवों का प्रबन्धन जैविक एवं अजैविक तत्वों के पारस्परिक संतुलन पर निर्भर करता है। आज एक ऐसी एकीकृत सोच की जरूरत है जो वन्यजीवों के प्रबन्धन, अनुश्रवण मानवीय प्रयासों से असम्भव तो नहीं, परन्तु कठिन जरूर है। आज इस वैज्ञानिक युग में सुदूर संवेदन एवं भौगोलिक सूचना तन्त्र आंकड़ों को एकत्रित कर उनका प्रबन्धन एवं विश्लेषण करने की उपयुक्त विधि है। इस युग में संगणकों के तीव्र विकास ने प्रबन्धन एवं विश्लेषण की प्रक्रिया को सरलीकृत कर दिया है। भौगोलिक सूचना तंत्र से (स्पाशियल एवं नौन स्पाशियल) आंकड़ों को समायोजित करके एक सुदृढ़ डाटाबेस का सृजन होता है जिससे मानचित्रों का सरल बोध होता है। महान हिमालयन राष्ट्रीय उद्यान परियोजना, विश्व बैंक द्वारा वित्त पोषित वानिकी शोध, शिक्षण एवं प्रसार परियोजना के अन्तर्गत जैवविविधता घटक को मद्देनजर रखते हुए 1995 से सन् 2000 तक चलाया गया। भूसंसाधन, आंकड़ा प्रबन्धन एवं पर्यावरण अनुश्रवण के क्षेत्र में उपरोक्त दोनों तकनीकों की उपयोगिता को दर्शाया गया है। आई.आर.एस. 1—बी. लिस— 2 उपग्रह बिम्बिका के चाक्षुश निर्वचन (विजुअल इन्टरप्रिटेशन), भूसत्यापन एवं वानस्पतिक सर्वेक्षण के द्वारा अध्ययन क्षेत्र का भूउपयोग/वानस्पतिक मानचित्र बनाया गया। क्षेत्र का भौगोलिक सूचना तंत्र के माध्यम से अंकित उच्चावन प्रतिरूप भी तैयार किया गया जो कि भविष्य में संसाधनों के प्रबन्धन एवं पर्यावरण के अनुश्रवण में सहायक सिद्ध होंगे।

रामदाना उत्पादन हेतु आनुवांशिकी सुधार की संभावना— एक समीक्षा

राममिलन पाण्डेय, पशुपति नाथ एवं जयेन्द्र कुमार जौहरी
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

सारांश

अमरैन्थस (Amaranthus) के अभिजनन की वर्तमान स्थिति और प्रचलित जातियों की संभाव्य पैदावार (Yield potential) के साथ-साथ पैदावार में वृद्धि की संभावनाओं और उपायों की इस शोध पत्र में चर्चा की गयी है जिससे कि पैदावार में और भी सुधार हो सके। ऐसा विचार है कि अधिकांशतः संभाव्य पैदावार में वृद्धि एक जीनीय गुणों के विदोहन से होती है। अतः यह सुझाव दिया जाता है कि मात्रात्मक गुणों में सुधार के लिए ऐसे गुणों का भी विदोहन किया जाना चाहिये जो बहुजीनीय (polygenic) हैं। अधिक पैदावार (वांछनीय पूर्व परिपक्वता) और मध्यम ऊँचाई वाले पौधों को आदर्श पौध प्ररूप कहते हैं। धान्य अमरैन्थस के अभिजनन क्षेत्र में जैव प्रौद्योगिकी (biotechnology) तकनीकियों के उपयोग की पहचान कर ली गयी है।

कुछ भारतीय लिग्नाइट एवं बिटूमनी कोयलों के तापीय विघटन व्यवहार एवं उनकी विद्युत-प्रतिरोधकता पर गामा विकिरण का प्रभाव

प्रेम शंकर मणि त्रिपाठी[1]., श्रीमन् नारायण तिवारी[2] कमलेश कुमार मिश्र[1] एवं निमिषा त्रिपाठी[3]
[1]केन्द्रीय ईंधन अनुसंधान संस्थान, पो. ऑ. - एफ़ आर आई, धनबाद 828108 (झारखंड)
[2]**भौतिकी विभाग, सेंट ज़ेवियर्स कॉलेज, रांची (झारखंड)**
[3]केन्द्रीय खनन अनुसंधान संस्थान, बरवा रोड़ धनबाद 826001 (झारखंड)

सारांश

ज्ञातव्य है कि कोयले का उच्च-ऊर्जा तथा आयनीकृत करने वाली गामा किरणों द्वारा विकिरण करने से उसकी संरचना प्रभावित होती है, जिसके फलस्वरूप उसके भौतिक तथा रासायनिक गुणों के भी अपेक्षाकृत प्रभावित अथवा परिवर्तित हो जाने की संभावना व्यक्त की गयी है। भारतीय कोयलों पर इस प्रकार का अध्ययन बहुत ही कम हुआ है। इसी दृष्टिकोण से केन्द्रीय ईंधन अनुसंधान संस्थान, धनबाद में विगत कुछ वर्षों में विभिन्न प्रकार के भारतीय कोयलों एवं लिग्नाइट पर गामा विकिरण के प्रभाव का गहन अध्ययन किया गया है। यह शोध कार्य उसी व्यापक अध्ययन की एक कड़ी है । चूंकि कोयले का ऊष्मीय विघटन व्यवहार कोयला हाइड्रोजनीकरण विधि में उपयोग में लाने वाले कोयले के चयन के दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण है और चूंकि कोयले की विद्युत प्रतिरोधकता भी उसका एक विशेष गुणधर्म है जो कि कोयले के गैर-ईंधन उपयोग-विशेषकर कार्बन शिल्पकृत पदार्थों यथा ग्रेफ़ाइट, इलेक्ट्रोड इत्यादि के बनाने में अत्यंत आग्रही है, अतः हम लोग यह अन्वेषण करने के लिये अभिप्रेरित हुये कि क्या गामा विकिरण कोयले के ऊष्मीय विघटन व्यवहार एवं उसकी विद्युत प्रतिरोधकता को प्रभावित करता है तो किस हद तक और यह तकनीकी दृष्टि से कितना लाभकारी होगा। प्रस्तुत शोध पत्र में राजस्थान के लिग्नाइट तथा रानीगंज (प. बंगाल) कोयलांचल के बिटूमनी कोयले के ऊष्मीय विघटन रूपांतरण व्यवहार तथा रानीगंज कोयलांचल के ही उच्च वाष्पशील अकोककारी हरियाजाम (गोपीनाथपुर संस्तर) कोयले की विद्युत प्रतिरोधकता पर गामा विकिरण के प्रयोगों के परिणाम वर्णित हैं। इन शोध प्रयोगों के परिणाम यह दर्शाते हैं कि अधिकतम 120 मेगा रॉड गामा डोज़ पर राजस्थान लिग्नाइट तथा रानीगंज बिटूमनी कोयला दोनों का ही ऊष्मीय विघटन व्यवहार उल्लेखनीय रूप से प्रभावित होता है, जिसके फलस्वरूप उनका रूपांतरण होता है। अविकिरणित तथा विकिरणित कोयलों के अंतरात्मक ऊष्मीय विश्लेषण मापन रेखाओं (differential thermal analysis curves) की तुलना करने से यह पाया गया कि विकिरणित लिग्नाइट तथा बिटूमनी कोयले की मापन रेखाओं में अतिरिक्त ऊष्माशोषी तथा ऊष्माउन्मोची शीर्ष (peaks) दृष्टिगोचर होते हैं। जब कि ऊष्मा उन्मोची शीर्ष कोयले के घनीकरण तापक्रम के द्योतक हैं, वहीं ऊष्माशोषी शीर्ष उसकी अधिकतम तरलता (fluidity) विघटन तथा निम्न आण्विक भार वाले अवयवों का वाष्पीकरण इंगित करते हैं। इसी प्रकार उच्च वाष्पशील अकोककारी हरियाजाम कोयले के गामा विकिरण प्रयोगों के परिणाम यह स्पष्ट प्रदर्शित करते हैं कि इस कोयले की विद्युत प्रतिरोधकता गामा विकिरणोपरांत काफी हद तक प्रभावित होती है। प्रारंभ में 150 मेगा रॉड गामा डोज़ तक पहले तास कोयले की विद्युत प्रतिरोधकता कम होती है, परंतु इससे ज्यादा गामा डोज़ पर अध्ययन किये गये सभी तापक्रमों (280, 500, 800^0 C) पर विद्युत प्रतिरोधकता धीरे - धीरे बढ़ती है और 800^{0}C पर अप्रत्याशित रूप से बढ़कर अधिकतम हो जाती है। इन परिणामों की व्याख्या गामा किरणों के प्रभाव से कोयले की संरचना के अपक्षीणन (degradation) तथा बहुसंघनन (polycondensation) अणुओं की तिर्यक बंधता (cross-linked) के आधार पर की गयी है । अतः इन अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि गामा विकिरण के फलस्वरूप कोयले के तापीय विघटन व्यवहार में आये परिवर्तन, जहाँ राजस्थान लिग्नाइट तथा रानीगंज कोयले की उपयोगिता कोयला-हाइड्रोजनीकरण विधि में दर्शाते हैं, वहीं अकोककारी उच्च वाष्पशील हरियाजाम कोयले की बढ़ी हुयी विद्युत प्रतिरोधकता का लाभकारी उपयोग कोक व अन्य कार्बन शिल्पकृत पदार्थों (ग्रेफाइट, कार्बन इलेक्ट्रोड इत्यादि) के बनाने में महत्वपूर्ण होगा ।